नैनो नहीं, सार्वजनिक यातायात प्रणाली चाहिए

जे. अकलेचा

एक विशेषज्ञ ने कहा है, सारी दुनिया जहां दो पहियों की ओर जा रही है, वहीं भारत चार पहियों की ओर बढ़ रहा है। यानी बढ़ते प्रदूषण के मद्देनज़र अन्य देशों में लोग साइकिल अपना रहे हैं लेकिन भारत में कार के प्रति रुझान बढ़ता जा रहा है। अब तो टाटा की लखटकिया कार 'नैनो' शीघ्र ही बाज़ार में आ रही है जो इस रुझान को जुनून में बदल देगी। इस कार की कम कीमत मध्यम वर्ग की बढ़ती आकांक्षाओं को पंख लगा देगी।

रतन टाटा ने कहा है कि इससे उनका एक बड़ा सपना साकार हो गया है - यह सपना था कि देश के मध्यमवर्गीय परिवारों के पास 'अपनी' कार हो ताकि उन्हें गर्मी या बरसात में स्कूटर पर धक्के न खाना पड़ें। रतन टाटा की इस 'नेकनीयत' पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए लेकिन टाटा का यह सपना कहीं देश के लिए दुःस्वप्न न बन जाए। आज नैनो आई है, कल और भी कई सस्ती कारें बाज़ार में होंगी। इससे लोन देने के लिए तैयार बैठे वित्तीय संस्थान हर उस व्यक्ति को कार के दरवाज़े तक पहुंचा देंगे जिनके पास अभी दुपहिया वाहन है और जो खुद को चार पहियों पर देखना चाहते हैं। लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है जो बेहद चिंतनीय है।

फिलहाल देश में 10 करोड़ परिवार ऐसे हैं जो मध्यम वर्ग में शुमार हैं। इनमें से अधिकांश के पास दुपहिया वाहन हैं। ये ही वे लोग हैं जो सस्ती कारों के आने के बाद सड़कों के चरित्र को बदल सकते हैं। सस्ती कार और आसान बैंक लोन की बदौलत हो सकता है कि अगले कुछ सालों में सड़कों पर लाखों नई कारें उतर आएंगी। तब देश किन समस्याओं से रूबरू होगा, इसका अनुमान इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी के 'वर्ल्ड एनर्जी आउटलुक-2007' में प्रस्तुत आंकड़ों से लगाया जा सकता है। गौरतलब है कि ये आंकड़े मौजूदा स्थितियों के संदर्भ में हैं, यानी 'नैनो इफेक्ट' इनमें शामिल नहीं है।

वर्ल्ड एनर्जी आउटलुक

- 2005 से 2030 तक भारत में ईंधन की खपत बढ़कर दुगनी हो जाएगी।
- 2015 तक भारत धुएं का उत्सर्जन करने वाला दुनिया का तीसरा देश बन जाएगा। चीन पहले व अमरीका दूसरे स्थान पर होंगे।
- 2000-01 की तुलना में 2030 तक भारतीय लोग औसतन तीन गुना अधिक सफर करेंगे।
- यदि सार्वजनिक यातायात प्रणाली की उपेक्षा जारी रही तो इसका हिस्सा 2001 के 75.7 फीसदी से घटकर 2031 तक 44.7 फीसदी रह जाएगा।

इन आंकड़ों में अगर नैनो इफेक्ट को मिलाकर देखें तो देश के सामने तीन भावी समस्याएं नज़र आ रही हैं - एक, प्रदूषण का स्तर बढ़ेगा। दूसरी, शहरों, विशेषकर महानगरों में ट्रैफिक कंजेशन में बेतहाशा बढ़ोतरी होगी और तीसरी, हमारा तेल आयात बिल बेकाबू हो जाएगा।

वित्तीय वर्ष 2006-07 में पेट्रोलियम पदार्थों के आयात पर हमें 2,60,380 करोड़ रुपए खर्च करने पड़े थे। इस दौरान तो अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की कीमत 60 से 70 डॉलर प्रति बैरल के आसपास चल रही थी। अब यह कीमत 100 डॉलर प्रति बैरल है और भविष्य में इसमें और भी इजाफा होने की आशंका है। ऐसे में तेल की

बढ़ती खपत और बढ़ती कीमत हमारी अर्थव्यवस्था की तेज़ रफ़्तार पर विराम लगा सकती है।

प्रदूषण रोकने के लिए वाहनों की डिज़ाइन में लगातार परिवर्तन कर हाइब्रिड, हाइड्रोजन, इलेक्ट्रिक वाहन इत्यादि तैयार किए जा रहे हैं। इससे हो सकता है कि भविष्य में कारों से होने वाला प्रदूषण बहुत अधिक चिंता की बात न रहे। रतन टाटा का ख्याल है कि 'सुनीता नारायण और आर. के. पचौरी चैन की नींद सो सकते हैं क्योंकि मेरी कार पर्यावरण के सभी मानदंडों को पूरा करती है।' लेकिन फिलहाल तो यही नज़र आ रहा है कि कितनी भी इको-फ्रेंडली कार बना ली जाए, वातावरण में धुआं तो छोड़ेगी ही।

तेल आयात बिल और प्रदूषण के अलावा एक और समस्या गंभीर रूप धारण करने वाली है - ट्रैफिक कंजेशन। दुर्भाग्य से इस पर अभी इतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है, लेकिन दिल्ली-कोलकाता जैसे शहरों में यातायात की आज जो स्थिति है, उसे खतरे की घंटी माना जा सकता है। इन शहरों में तो हालत यह है कि भीड़भाड़ वाले समय में वाहन रेंगते हुए आगे बढ़ते हैं। हाथ रिक्शा और कार दोनों की गति समान हो जाती है। इसकी वजह विज्ञान व पर्यावरण केंद्र के एक अध्ययन में ढूंढी जा सकती है। इस अध्ययन के अनुसार शहरों में जिस गति से वाहनों की संख्या बढ़ रही है, उस गति से ढांचागत सुविधाओं का विकास नहीं हो पा रहा है। अध्ययन बताता है कि दिल्ली में 1996 से 2006 के बीच सड़कों की लंबाई में 20 फीसदी की बढ़ोतरी हुई, जबकि कारों की संख्या में 132 फीसदी। दिल्ली व बैंगलोर में आज रोज़ाना एक हज़ार नए वाहन सड़कों पर आ जाते हैं जिससे पहले से ही दबाव में जी रहीं सड़कों की हालत और भी बदतर होती जा रही है। दूसरी ओर, एसोचैम का एक सर्वे कहता है कि बड़े शहरों में आज औसतन एक कामकाजी व्यक्ति के ढाई घंटे यातायात में ही बर्बाद हो जाते हैं। ट्रैफिक कंजेशन यानी वाहनों की धीमी गति का मतलब है हर साल 3,000 से 4,000 करोड़ रुपए का नुकसान।

इस पूरे परिप्रेक्ष्य में दो सवाल उभरते हैं - पहला, आखिर देश में कारों के प्रति क्रेज़ क्यों बढ़ता जा रहा है? और दूसरा, कार खरीदने की इस प्रवृत्ति से पैदा होने वाली पर्यावरण, ट्रैफिक कंजेशन और तेल आयात बिल जैसी समस्याओं के समाधान के लिए क्या किया जाए? इन दोनों सवालों का एक ही जवाब है - सार्वजनिक यातायात प्रणाली। कार या अपने खुद के वाहन के प्रति बढ़ते क्रेज़ की सबसे बड़ी वजह है एक मज़बूत सार्वजनिक यातायात प्रणाली का अभाव; ऐसी प्रणाली जो न केवल सर्वसुलभ व सस्ती हो, बल्कि सुरक्षित भी हो। रोज़ाना आफिस से घर व घर से आफिस जाने के लिए खुद का वाहन चलाना जोखिमभरा व तनावपूर्ण होता है। ऐसे में यदि लोगों को ऐसा साधन मिल जाए जिसमें बैठकर वे आसानी से कोई पत्रिका या अखबार पढ़ते-पढ़ते या अपने मित्रों से गपशप करते हुए आ-जा सकें, तो शायद बहुत-से लोग उसका ही इस्तेमाल करना पसंद करेंगे।

लेकिन हमारे यहां ऐसी सार्वजनिक यातायात प्रणाली की घोर उपेक्षा की गई है। या तो पर्याप्त बसें नहीं हैं और अगर हैं तो उनके टाइमिंग में कोई तालमेल नहीं है। रात नौ-दस बजे बाद तो कोई साधन ही नहीं मिलता। ऐसे में व्यक्ति अपने निजी साधन का इस्तेमाल न करे तो फिर क्या करें। अपना निजी वाहन खरीदने के लिए कई बार तो लोग रोज़मर्रा की दूसरी ज़रूरतों में कटौती करने को मजबूर होते हैं, लेकिन इसके सिवाय उनके पास कोई विकल्प भी नहीं होता। यही वजह है कि हमारे यहां प्रति हज़ार आबादी पर दुपहिया वाहनों की संख्या 45 और कारों की संख्या 7 है। हालांकि विकसित देशों की तुलना में यह आंकड़ा बहुत ज़्यादा नहीं है, लेकिन देश में बसों की संख्या (प्रति हज़ार आबादी 0.7) की तुलना में तो यह काफी अधिक है। इसीलिए विज्ञान व पर्यावरण केंद्र ने हाल ही में वित्त मंत्री को पत्र लिखकर बसों पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क को 16 फीसदी से घटाकर शून्य करने की सलाह दी है, ताकि सार्वजनिक यातायात में बसों की संख्या में इजाफा हो सके।

आज भी देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा सार्वजनिक यातायात पर निर्भर है, लेकिन सरकारी नीतियां बेहतर सार्वजनिक यातायात सुविधा उपलब्ध करवाने की बजाय निजी वाहनों की खरीद को प्रोत्साहन देती प्रतीत होती हैं। हाल ही में केंद्रीय शहरी विकास मंत्रालय द्वारा राज्यों को साइकिलों को बढ़ावा देने सम्बंधी सुझाव भी इसी ओर इंगित करता है कि सार्वजनिक यातायात प्रणाली के विकास में सरकारों की कोई दिलचस्पी नहीं है। लेकिन सच तो यह है कि निजी वाहन सड़कों पर जितना स्थान घेरते हैं, उसकी तुलना में परिवहन का भार बहुत कम उठाते हैं। विज्ञान व पर्यावरण केंद्र के अनुसार दिल्ली में निजी कार व दुपहिया वाहन कुल रोड स्पेस का 75 फीसदी स्थान लेते हैं, जबकि उनमें यात्रा करने वाले केवल 20 फीसदी होते हैं। इसकी तुलना अगर बसों से की जाए तो वे केवल पांच प्रतिशत स्थान घेरती हैं, लेकिन 60 फीसदी से अधिक लोगों को मंज़िल तक पहुंचाती हैं। ऐसे में हर दृष्टि से बसें कहीं बेहतर परिणाम दे सकती हैं। बसों के अलावा सार्वजनिक परिवहन के विकल्पों (मेट्रो, बस रैपिड ट्रांज़िट सिस्टम, पैरा ट्रांज़िट सिस्टम) को अलग-अलग शहर की ज़रूरत के अनुसार बढ़ावा दिया जा सकता है।

मुद्दे की बात यह है कि चाहे बस हों या मेट्रो, लोगों को वैकल्पिक यातायात की ऐसी सुविधा मिलनी चाहिए कि निजी वाहनों पर निर्भरता कम हो। इसके लिए देश के नीति निर्धारकों को क्या करना चाहिए? उन्हें चाहिए कि वे कोलंबिया के बोगोटा शहर की ओर देखें। करीब 70 लाख की आबादी वाला यह शहर विश्व के कई अन्य शहरों में सार्वजनिक यातायात प्रणाली के विकास के लिए प्रेरणा का केंद्र बनकर उभरा है। इसने बार्सीलोना, कोपेनहेगन, बर्लिन, पोर्टलैंड (अमरीका), क्यूरीटिबा (ब्राजील) जैसे शहरों को बेहतर सार्वजनिक यातायात प्रणाली व उत्कृष्ट नगर नियोजन के लिए प्रेरित किया है। यहां हाल के वर्षों में बस आधारित सार्वजनिक यातायात प्रणाली का विकास हुआ है। इन शहरों में पैदल चलने वालों व साइकिल चालकों के लिए सड़कों पर अलग से स्थान रखे जाने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है जिससे ट्रैफिक कंजेशन व प्रदूषण जैसी समस्याएं कम हुई हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***